विविध सिविल

न्यायमूर्ति बल राज तुली के समक्ष,
शेर सिंह, - याचिकाकर्ता

बनाम

कुलपति, पंजाब विश्वविद्यालय और अन्य, - उत्तरदाता

1964 की सिविल रिट संख्या 2780

9 अप्रैल, 1969

भारत का संविधान ***(1950)*** *- अनुच्छेद 12, 226 और 311 - पूर्वी पंजाब विश्वविद्यालय अधिनियम (1947 का* ***VII****) - पंजाब विश्वविद्यालय - क्या राज्य' संविधान के भाग XIV में प्रयुक्त अभिव्यक्ति के अर्थ के भीतर- विश्वविद्यालय के कर्मचारी - क्या अनुच्छेद* ***311*** *के तहत सुरक्षा उपायों के हकदार हैं - ऐसे कर्मचारियों की सेवाओं को समाप्त करने का आदेश - क्या अनुच्छेद के तहत चुनौती दी जा सकती है।* ***226****—प्राकृतिक न्याय के नियम—चाहे निजी पक्षों पर लागू हों।*

अभिनिर्धारित किया गया कि पंजाब विश्वविद्यालय एक स्वायत्त निकाय है जिसे पूर्वी पंजाब विश्वविद्यालय अधिनियम, **1947** द्वारा बनाया गया है, और यह भारत के संविधान के भाग **XIV** में उस अभिव्यक्ति के अर्थ के भीतर एक 'राज्य' नहीं है। संविधान के भाग **XIV** में प्रयुक्त 'राज्य' शब्द का अर्थ उन राज्यों से है जिनका उल्लेख संविधान की पहली अनुसूची में किया गया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि पंजाब विश्वविद्यालय संविधान के अनुच्छेद **12** में परिभाषित "राज्य" शब्द के अंतर्गत आता है, लेकिन यह केवल इसके भाग **III** के प्रयोजनों के लिए है। भाग **XIV** में 'राज्य' का उपयोग अनुच्छेद **12** द्वारा परिकल्पित अर्थ में नहीं किया गया है। **(**पैरा **5)**

यह व्यवस्था दी गई है कि पंजाब विश्वविद्यालय के कर्मचारियों के मामले में जो अधिकतम तीन सौ रुपये प्रति माह के वेतन के साथ स्वीकृत पदों पर हैं, उन्हें निलंबित किया जा सकता है और कार्यालय से हटाया जा सकता है, या कुलपति द्वारा किसी अन्य प्रकार की सजा दी जा सकती है। निलंबन, हटाने या सजा के ऐसे किसी भी आदेश की स्थिति में प्रभावित व्यक्तियों को सिंडिकेट में अपील करने का अधिकार है जिसका निर्णय अंतिम किया गया है। उन्हें किसी भी प्रकार का कोई अन्य सुरक्षा उपाय प्रदान नहीं किया गया है। पंजाब सिविल सेवा (सजा और अपील) नियम, **1952** को पंजाब विश्वविद्यालय के कर्मचारियों पर लागू नहीं किया गया है। इन परिस्थितियों में विश्वविद्यालय के कर्मचारियों को किसी भी अन्य नियोक्ता के कर्मचारियों की तुलना में उच्च स्तर पर नहीं रखा जा सकता है। यह केवल संविधान के अनुच्छेद **311** में या केंद्र सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन विभिन्न सेवाओं के सेवा नियमों में प्रदान किया गया सुरक्षा उपाय है जिसका उनके कर्मचारी लाभ उठाने के हकदार हैं और औचित्य के साथ आग्रह कर सकते हैं कि यदि उन सुरक्षा उपायों का सम्मान नहीं किया जाता है या निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया जाता है, उनकी बर्खास्तगी अवैध है। लेकिन, मालिक और नौकर के मामले में, अनुबंध का सामान्य नियम लागू होगा। इसलिए, पंजाब विश्वविद्यालय के कर्मचारी संविधान के अनुच्छेद **311** में एक सरकारी कर्मचारी के लिए सन्निहित सुरक्षा उपायों के लाभ का दावा नहीं कर सकते हैं।

(पैरा **5** और **6)**

अभिनिर्धारित किया गया की पंजाब विश्वविद्यालय न तो एक सरकारी निगम है और न ही केंद्र सरकार द्वारा या उसके अधिकार के तहत चलाया जाने वाला उद्योग है। विश्वविद्यालय को शामिल करने वाले संविधि में किसी भी दायित्व का प्रावधान नहीं है जो विश्वविद्यालय अपने कर्मचारियों को उनकी सेवाओं के संबंध में देता है। किसी भी प्राधिकरण द्वारा कर्मचारियों को कोई संरक्षण या रक्षोपाय प्रदान करने के लिए कोई सांविधिक नियम

निर्धारित नहीं हैं। अपने कर्मचारियों के संबंध में कानून द्वारा विश्वविद्यालय पर कोई वैधानिक या सार्वजनिक कर्तव्य नहीं लगाया गया है, जिसके प्रवर्तन के माध्यम से मांग की जा सकती है। मंडामस। विश्वविद्यालय अपने किसी भी कर्मचारी को नियोजित करने, निलंबित करने, हटाने या बर्खास्त करने के लिए स्वतंत्र है और इसी तरह कर्मचारियों को दोनों के बीच अनुबंध की शर्तों के अधीन किसी भी समय रोजगार छोड़ने का अधिकार है। संविधान के अनुच्छेद **226** के तहत उपाय अनुबंध संबंधी दायित्वों को लागू करने के लिए उपलब्ध नहीं है और इसलिए पंजाब विश्वविद्यालय के कर्मचारियों की सेवाओं को समाप्त करने के आदेश को संविधान के अनुच्छेद **226** के तहत चुनौती नहीं दी जा सकती है। **(**पैरा **6)**

अभिनिर्धारित हुआ कि प्राकृतिक न्याय के नियम किसी भी क़ानून में सन्निहित नहीं हैं। वे न्याय करने के लिए हैं और उन अधिकारियों द्वारा पालन किया जाना चाहिए जिन पर सार्वजनिक या वैधानिक कर्तव्य लगाया गया है, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि निजी पक्षों को भी इसका पालन करना चाहिए। **(**पैरा **9)**

भारत के संविधान के अनुच्छेद *226* और *227* के तहत याचिका में अनुरोध किया गया है कि याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त करने के पंजाब विश्वविद्यालय के *25* सितंबर,*1964* के आदेश को रद्द करते हुए सर्टिओरारी, परमादेश निषेध या किसी अन्य उपयुक्त, रिट, आदेश या निर्देश की प्रकृति में एक रिट जारी की जाए और आगे प्रार्थना की जाए कि याचिकाकर्ता उस अवधि के लिए बहाल और प्रतिपूर्ति की जाए जब वह नौकरी से बाहर हो गया है।

याचिकाकर्ता की ओर से वकील श्री आई.के.एम.एहता,
श्री डी एन अवस्थी, उत्तरदाताओं के लिए वकील ।

निर्णय

न्यायमूर्ति तुली , - याचिकाकर्ता 31 अगस्त, 1963 को पंजाब विश्वविद्यालय में मुख्य प्रयोगशाला सहायक के रूप में शामिल हुए थे। जैव रसायन विभाग, जिसके लिए नियुक्ति पत्र संख्या 10189-91/ दिनांक 24 अगस्त, 1963 को जारी किया गया था, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक 'ए' है। इस पत्र के अनुसार, याचिकाकर्ता को काम शुरू करने की तारीख से एक वर्ष की परिवीक्षा पर 145-7-180-12-300 रुपये के ग्रेड में 145 रुपये प्रति माह पर नियुक्त किया गया था। यदि वह विश्वविद्यालय की सेवा छोड़ना चाहता है, तो उसे कम से कम एक महीने की पूर्व सूचना देनी थी या विश्वविद्यालय को उसके बदले में अपने एक महीने के वेतन के बराबर राशि का भुगतान करना था।

(2) याचिकाकर्ता की परिवीक्षा की अवधि समाप्त हो गई। 31 अगस्त, 1964 को उन्हें पंजाब विश्वविद्यालय कैलेंडर, 1962 के खंड 1 के विनियमन 8 के अनुसार वार्षिक वेतन वृद्धि प्रदान की गई थी, जो निम्नानुसार है: –

> "एक वेतन वृद्धि आमतौर पर निश्चित रूप से एक मामले के रूप में ली जाएगी, लेकिन नियुक्ति प्राधिकारी वेतन वृद्धि को रोकने के लिए सक्षम होगा यदि कर्मचारी का आचरण अच्छा नहीं रहा है या उसका काम संतोषजनक नहीं रहा है।

25 सितंबर, 1964 को अचानक उस तारीख के पत्र संख्या 9954-56/ईएसटी द्वारा, कुलपति ने याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त कर दिया क्योंकि उसका काम और आचरण संतोषजनक नहीं पाया गया था। उन्हें पत्र की तारीख से एक महीने का नोटिस दिया गया था। पंजाब विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार द्वारा याचिकाकर्ता को जारी किए गए पत्र की एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक 'बी' में दी गई है। याचिकाकर्ता ने उक्त कैलेंडर के पृष्ठ 73 पर विनियमन 3 के तहत पंजाब विश्वविद्यालय के सिंडिकेट में अपील दायर की, जिसे 27 नवंबर, 1964 को खारिज कर

दिया गया। अपील को अस्वीकार करने वाले सिंडिकेट का निर्णय 27 नवंबर, 1964 को आयोजित इसकी बैठक की कार्यवाही के पैराग्राफ 39 में निहित है, और निम्नानुसार है: -

> "जैव रसायन विभाग के प्रमुख प्रयोगशाला सहायक श्री शेर सिंह की असंतोषजनक कार्य और आचरण के लिए 25 अक्टूबर, 1964 से उनकी सेवाओं को समाप्त करने के कुलपति के आदेशों के खिलाफ अपील पर विचार किया गया।
>
> कुलपति ने कहा कि जैव रसायन विभाग के प्रमुख ने बताया था कि श्री शेर सिंह का कार्य और आचरण असंतोषजनक था। जब कुलपति ने श्री शेर सिंह की सेवाओं को समाप्त करने के आदेश पारित किए थे, तब उनकी पुष्टि नहीं हुई थी। श्री शेर सिंह की अपील पढ़कर सुनाई गई।

संकल्प: श्री शेर सिंह की अपील को अस्वीकार कर दिया जाए। याचिकाकर्ता ने 18 दिसंबर, 1964 को इस न्यायालय में वर्तमान रिट याचिका दायर की, जिसमें मुख्य रूप से निम्नलिखित आधारों पर विश्वविद्यालय द्वारा उनकी सेवाओं की समाप्ति के आदेश को चुनौती दी गई:

i. यह आदेश दुर्भावनापूर्ण था क्योंकि याचिकाकर्ता ने 1962 में आयोजित एमबीबीएस (प्रथम व्यावसायिक) परीक्षा के लिए अपने परिणाम की घोषणा के संबंध में इस न्यायालय (1963 की सिविल रिट संख्या 1856) में एक रिट याचिका दायर की थी, जिसे उन्होंने मेडिकल कॉलेज पटियाला के छात्र के रूप में लिया था। उन्हें असफल घोषित किया गया था, लेकिन रिट याचिका के परिणामस्वरूप उन्हें इस न्यायालय के आदेश के अनुसार अपने अंकों का पुनर्मूल्यांकन करने के बाद सफल घोषित किया गया था। माला का सबूत प्रश्नावली में निहित बताया गया है जिसका याचिकाकर्ता को जवाब देना आवश्यक था और जिसकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक 'सी' है;

ii. यह आदेश प्रतिवादी 2 के अनुरोध पर किया गया था, जो विश्वविद्यालय के जैव रसायन विभाग के प्रमुख हैं क्योंकि वह अपने पसंदीदा श्री लेख राज शर्मा, प्रतिवादी 3 को नियुक्त करना चाहते थे, जो याचिकाकर्ता के स्थान पर रसायन विज्ञान विभाग के प्रयोगशाला पर्यवेक्षक श्री ज्ञान चंद के भाई हैं;

iii. कि उनकी सेवाओं को समाप्त करते समय प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन नहीं किया गया था, अर्थात, उन्हें कभी भी कोई नोटिस या सूचना नहीं दी गई थी कि उनका काम और आचरण असंतोषजनक पाया गया था और न ही उन्हें आरोप को समझाने का कोई अवसर दिया गया था और न ही उनकी सेवाओं को समाप्त करने से पहले विश्वविद्यालय द्वारा कोई जांच की गई थी;

iv. कि उनकी परिवीक्षा की अवधि 31 अगस्त, 1964 को समाप्त हो गई और उन्हें वर्ष की समाप्ति पर वेतन वृद्धि दी गई। वेतन वृद्धि आम तौर पर दी जाती है यदि कार्य और आचरण संतोषजनक पाया जाता है। यह आरोप कि उनका कार्य और आचरण संतोषजनक नहीं था, 31 अगस्त, 1964/1 सितंबर, 1964 को उन्हें दी गई वेतन वृद्धि के साथ असंगत था और यह नहीं कहा जा सकता है कि अगले 25 दिनों में उनका काम और आचरण असंतोषजनक पाया गया था।

(3) रिट याचिका पर वापसी प्रतिवादी 2 द्वारा दायर की गई है जिसमें दुर्भावना के आरोप से इनकार किया गया है। यह कहा गया है कि उनकी परिवीक्षा अवधि की समाप्ति से कई महीने पहले उनका काम और आचरण असंतोषजनक पाया गया था, लेकिन उन्हें सुधार के लिए समय दिया जा रहा था। यह भी बताया गया है कि उनकी सेवा अस्थायी थी और उनकी पुष्टि नहीं की गई थी। उन्हें दिए गए एक महीने के नोटिस पर उनकी सेवाएं समाप्त की जा सकती हैं। जांच कराने का कोई सवाल ही नहीं था क्योंकि यह विभाग के प्रमुख की राय थी कि उनकी परिवीक्षा अवधि के दौरान उनके काम और आचरण के कारण उनकी सेवाओं को समाप्त कर दिया गया, जिसके बाद किसी जांच की आवश्यकता नहीं थी और न ही याचिकाकर्ता को कोई कारण बताओ नोटिस देने की आवश्यकता थी। इस प्रकार इस आधार पर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का कोई उल्लंघन नहीं हुआ।

(4) प्रारंभिक आपत्ति के माध्यम से, यह आग्रह किया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा विश्वविद्यालय के खिलाफ कोई रिट याचिका सक्षम नहीं है क्योंकि विश्वविद्यालय पर अपनी सेवाओं को समाप्त करने से पहले याचिकाकर्ता द्वारा इंगित प्रक्रिया का पालन करने के लिए कोई अनिवार्य दायित्व नहीं लगाया गया है। इसलिए, याचिकाकर्ता को इस न्यायालय से विश्वविद्यालय के खिलाफ जांच आदि करने का निर्देश देने के लिए परमादेश मांगने का कोई अधिकार नहीं है। याचिकाकर्ता का उपाय केवल नुकसान के लिए मुकदमे के माध्यम से है और उसे संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय द्वारा विश्वविद्यालय की सेवा में बहाल नहीं किया जा सकता है। दूसरी आपत्ति यह है कि याचिकाकर्ता की सेवा एक अनुबंध के तहत थी और नियोक्ता और कर्मचारी के बीच एक संविदात्मक दायित्व के प्रवर्तन के लिए रिट अधिकार क्षेत्र का लाभ नहीं उठाया जा सकता है। अंतिम आपत्ति यह है कि रिट किसी कर्मचारी के खिलाफ विश्वविद्यालय द्वारा की गई विशुद्ध प्रशासनिक कार्रवाई के संबंध में विश्वविद्यालय के खिलाफ नहीं है।

(5) तय होने वाला पहला बिंदु यह है कि क्या याचिकाकर्ता भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 या पंजाब सिविल सेवा (सजा और अपील) नियम, 1952 में प्रदान किए गए किसी भी सुरक्षा उपायों का हकदार है। बदले में, यह मामला इस निर्धारण पर निर्भर करता है कि क्या पंजाब विश्वविद्यालय को 'राज्य' कहा जा सकता है और इसके कर्मचारियों को संघ की सिविल सेवा या किसी राज्य की सिविल सेवा का सदस्य कहा जा सकता है या संघ या राज्य के अधीन सिविल पद धारण किया जा सकता है। पंजाब विश्वविद्यालय एक स्वायत्त निकाय है जिसे 1947 के पूर्वी पंजाब विश्वविद्यालय अधिनियम VII द्वारा बनाया गया है और यह भारत के संविधान के भाग XIV में अभिव्यक्ति के अर्थ के भीतर एक 'राज्य' नहीं है और अनुच्छेद 311 के प्रावधान विश्वविद्यालय के कर्मचारियों पर लागू नहीं होते हैं। संविधान के भाग XIV में प्रयुक्त "राज्य" शब्द का अर्थ उन राज्यों से है जिनका उल्लेख संविधान की पहली अनुसूची में किया गया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि पंजाब विश्वविद्यालय संविधान के अनुच्छेद 12 में परिभाषित "राज्य" शब्द द्वारा कवर किया जाएगा, लेकिन यह केवल इसके भाग III के प्रयोजनों के लिए है। अनुच्छेद 12 में "राज्य" में भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण में सभी स्थानीय और अन्य प्राधिकरण शामिल हैं। पंजाब विश्वविद्यालय भारत सरकार के नियंत्रण में नहीं है, लेकिन यह निश्चित रूप से भारत के क्षेत्र के भीतर एक प्राधिकरण है। भाग XIV में, हालांकि, "राज्य" का उपयोग उस अर्थ में नहीं किया जाता है। इस कारण से, मेरा विचार है कि पंजाब विश्वविद्यालय के कर्मचारी संविधान के अनुच्छेद 31 में एक सरकारी कर्मचारी के लिए सन्निहित सुरक्षा उपायों के लाभ का दावा नहीं कर सकतेहैं।

(6) पंजाब विश्वविद्यालय कैलेंडर 1962 के अध्याय IV, खंड *I*, विश्वविद्यालय के अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति, सेवा की शर्तों आदि के लिए विनियम प्रदान करता है। अधिकारियों के वर्ग 'ख' में वे व्यक्ति शामिल होते हैं जिन्हें प्रति माह एक सौ बीस रुपये या उससे अधिक के न्यूनतम वेतन के साथ वेतनमान में नियुक्त किया जाता है और उस अध्याय के विनियम 1 में उल्लिखित वर्ग 'ए' के (i) और (ii) में शामिल नहीं किया जाता है। इस प्रकार याचिकाकर्ता कक्षा 'बी' का अधिकारी था। कक्षा ख के अधिकारियों के मामले में विश्वविद्यालय के अधिकारियों या कर्मचारियों की नियुक्ति और निलंबन और पद से निष्कासन या किसी भी प्रकार का दंड सिंडिकेट के पास है जैसा कि उस अध्याय के विनियम 3 में प्रावधान किया गया है। उस विनियम का एक परंतुक है जिसमें कहा गया है कि स्वीकृत पदों पर आसीन विश्वविद्यालय के कर्मचारियों के मामले में अधिकतम तीन सौ रुपये प्रति माह के वेतन के साथ नियुक्ति की जा सकती है, और कार्यालय से निलंबन और निष्कासन किया जा सकता है, या कुलपति द्वारा किसी अन्य प्रकार की सजा दी जा सकती है। निलंबन, हटाने या सजा के ऐसे किसी भी आदेश की स्थिति में, प्रभावित व्यक्तियों को सिंडिकेट में अपील करने का अधिकार होगा जिसका निर्णय अंतिम बनाया गया है। यह विनियमन 3 के परंतुक के तहत था कि कुलपति ने याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त कर दिया क्योंकि उसका वेतन तीन सौ रुपये से कम और एक सौ बीस रुपये प्रति माह से अधिक था। विश्वविद्यालय के कर्मचारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के लिए कोई अन्य नियम प्रदान नहीं किए गए हैं। उन्हें किसी भी प्रकार का कोई अन्य सुरक्षा उपाय प्रदान नहीं किया गया है। पंजाब सिविल सेवा (सजा और अपील) नियम, 1952 पंजाब विश्वविद्यालय के कर्मचारियों पर लागू नहीं किए गए हैं। इन परिस्थितियों में विश्वविद्यालय के कर्मचारियों को किसी भी अन्य नियोक्ता के कर्मचारियों की तुलना में उच्च स्तर पर नहीं रखा जा सकता है। यह केवल संविधान के अनुच्छेद 311 में या केंद्र सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन विभिन्न सेवाओं के सेवा नियमों में प्रदान किए गए सुरक्षा उपाय हैं जिनका उनके कर्मचारी लाभ उठाने के हकदार हैं और औचित्य के साथ आग्रह कर सकते

हैं कि यदि उन सुरक्षा उपायों का सम्मान नहीं किया जाता है या निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया जाता है, उनकी बर्खास्तगी अवैध है। लेकिन, किसी अन्य स्वामी और नौकर के मामले में, अनुबंध का सामान्य नियम लागू होगा और कर्मचारी संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत बहाली के लिए इस न्यायालय से संपर्क नहीं कर सकता है। *प्रज्ञा टूल्स कॉर्पोरेशन बनाम सी. ए. इनामुल और अन्य*[1],में उच्चतम न्यायालय के उनके लॉर्डशिप की टिप्पणियां , मेरी राय में, पंजाब विश्वविद्यालय और उसके कर्मचारियों पर उपयुक्त रूप से लागू होते हैं। उस मामले में केंद्र सरकार और आंध्र प्रदेश सरकार के पास प्रागा टूल्स कॉरपोरेशन के क्रमशः 56 प्रतिशत और 32 प्रतिशत शेयर थे, जबकि शेष 12 प्रतिशत शेयर निजी व्यक्तियों के पास थे। सबसे बड़ा शेयरधारक होने के नाते, केंद्र सरकार के पास कंपनी के निदेशक के मामले को नामित करने की शक्ति थी। इन तथ्यों के आधार पर उनके लॉर्डशिप को निम्नानुसार माना गया है:-

> "फिर भी, कंपनी अधिनियम के तहत पंजीकृत होने और अधिनियम के प्रावधानों द्वारा शासित होने के नाते, कंपनी एक अलग कानूनी इकाई है और इसे या तो सरकारी निगम या केंद्र सरकार द्वारा या उसके अधिकार के तहत संचालित उद्योग नहीं कहा जा सकता है। एक परमादेश एक सार्वजनिक या वैधानिक कर्तव्य के प्रदर्शन को सुरक्षित करने के लिए निहित है, उस प्रदर्शन में जो इसके लिए आवेदन करता है उसके पास पर्याप्त कानूनी हित है। इस प्रकार, परमादेश के लिए एक आवेदन एक कार्यालय में बहाली के आदेश के लिए नहीं होगा जो अनिवार्य रूप से एक निजी चरित्र का है और न ही इस तरह के आवेदन को किसी कंपनी द्वारा अपने श्रमिकों के प्रति दायित्व के प्रदर्शन को सुरक्षित करने या किसी भी निजी विवाद को हल करने के लिए बनाए रखा जा सकता है। कंपनी एक गैर-सांविधिक निकाय है और कंपनी अधिनियम के तहत निगमित है, इसलिए उस पर न तो कोई वैधानिक और न ही कोई सार्वजनिक कर्तव्य लगाया गया था, जिसके संबंध में परमादेश के माध्यम से प्रवर्तन की मांग की जा सकती थी और न ही इसके कर्मचारियों में इस तरह के किसी भी वैधानिक या सार्वजनिक कर्तव्य को लागू करने के लिए कोई कानूनी अधिकार था।

तर्क की समानता पर, यह तत्काल मामले में कहा जा सकता है कि पंजाब विश्वविद्यालय पूर्वी पंजाब विश्वविद्यालय अधिनियम, 1947 के तहत बनाया गया है और उस अधिनियम के प्रावधानों द्वारा शासित है। यह न तो एक सरकारी निगम है और न ही केंद्र सरकार द्वारा या उसके अधिकार के तहत चलाया जाने वाला उद्योग है। विश्वविद्यालय को शामिल करने वाले संविधि में किसी भी दायित्व का प्रावधान नहीं है जो विश्वविद्यालय अपने कर्मचारियों को उनकी सेवाओं के संबंध में देता है। किसी भी प्राधिकरण द्वारा कर्मचारियों को कोई संरक्षण या रक्षोपाय प्रदान करने के लिए कोई सांविधिक नियम निर्धारित नहीं हैं। अपने कर्मचारियों के संबंध में कानून द्वारा विश्वविद्यालय पर कोई वैधानिक या सार्वजनिक कर्तव्य नहीं लगाया गया है, जिसके प्रवर्तन की मांग एक परमादेश के माध्यम से की जा सकती है । विश्वविद्यालय अपने किसी भी कर्मचारी को नियोजित करने, निलंबित करने, हटाने या बर्खास्त करने के लिए स्वतंत्र है और इसी तरह कर्मचारियों को दोनों के बीच अनुबंध की शर्तों के अधीन किसी भी समय रोजगार छोड़ने का अधिकार है। संविदात्मक दायित्वों के प्रवर्तन के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उपाय उपलब्ध नहीं है। इसलिए याचिकाकर्ता की यह याचिका सुनवाई योग्य नहीं है।

(7) याचिकाकर्ता के वकील द्वारा जोरदार तर्क दिया गया दूसरा बिंदु यह है कि प्रतिवादी 1 और 2 ने उसे कारण बताओ नोटिस देकर और उसे अपना स्पष्टीकरण देने का अवसर देकर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन नहीं किया। कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंडपीठ के एक फैसले *कलकत्ता बंदरगाह बनाम बालेश्वर सिंह*[2] पर भरोसा जताया गया । जिसमें यह कहा गया था (हेड नोट के अनुसार) कि-

> "कलकत्ता बंदरगाह के आयुक्तों को, एक सांविधिक-निकाय होने के नाते, निगमन के क़ानून के अनुसार कार्य करना चाहिए। पत्तन आयुक्तों का कर्मचारी एक सांविधिक प्राधिकारी अर्थात् कलकत्ता पत्तन के आयुक्तों का कर्मचारी होता है और इसलिए वह सरकार या सरकारी प्राधिकारी के अधीन सिविल सेवक नहीं होता है। इस सांविधिक प्राधिकरण को यह अधिकार मिला है कि वह लोगों को उनके कार्य करने के

---

1 A.I.R. 1969 S.C. 1306.
2 A.I.R. 1968 Cal. 206.

लिए नियोजित कर सकता है और उन्हें बर्खास्त कर सकता है या सेवा से निलंबित कर सकता है। उनके पास उस उद्देश्य के लिए नियम बनाने की शक्तियां भी हैं, लेकिन संविधान के अनुच्छेद 311 (2) के प्रावधान आकर्षित नहीं होते हैं, न ही सरकारी कर्मचारी पर लागू कोई नियम इस तरह से आकर्षित होता है। आपराधिक आरोपों में दोषी ठहराए जाने पर विभागीय कार्यवाही शुरू किए बिना किसी कर्मचारी की बर्खास्तगी से संबंधित केंद्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियमों की धारा 18 के प्रावधान पोर्ट आयुक्तों के कर्मचारी पर लागू नहीं होते हैं, क्योंकि इस नियम को बंदरगाह आयुक्तों द्वारा किसी विशिष्ट संकल्प द्वारा नहीं अपनाया गया है। हालांकि, पोर्ट कमिश्नर प्राकृतिक न्याय के नियमों से बंधे हैं और इसलिए, उन्हें आपराधिक आरोपों में दोषी ठहराए गए कर्मचारी को बर्खास्त करने से पहले, उसे कारण बताओ नोटिस देना चाहिए और उसका बचाव सुनना चाहिए और उसके बाद ही विभागीय कार्यवाही के माध्यम से उसे बर्खास्त करना चाहिए।

उस मामले में बालेश्वर सिंह को सेवा से हटा दिया गया था क्योंकि उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 147 और 323 के तहत आपराधिक आरोप में दोषी ठहराया गया था, और जुर्माना देने या सश्रम कारावास से गुजरने की सजा सुनाई गई थी, जिसकी अपीलीय अदालत द्वारा पुष्टि की गई थी। उन्हें इस आधार पर सेवा से हटा दिया गया था। उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका दायर की और बसु, जे ने कहा, "(i) कि संबंधित तारीख पर बंदरगाह आयुक्तों ने कोई नियम नहीं बनाया था और कोई निष्कासन नहीं हो सकता था, (ii) प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन हुआ था और इस तरह का आदेश अमान्य था। उस आदेश के खिलाफ कलकत्ता बंदरगाह के आयुक्तों ने एक अपील दायर की जिसे खारिज कर दिया गया और बसु, जे के आदेश की पुष्टि की गई। विद्वान न्यायाधीशों के प्रति बहुत सम्मान के साथ, मैं ऊपर निर्धारित उच्चतम न्यायालय के उनके लॉर्डशिप के निर्णय को ध्यान में रखते हुए उनके निर्णय का पालन करने का इच्छुक नहीं हूं। इन मामलों को एक मुकदमे में उठाया जा सकता है ताकि यह घोषणा की जा सके कि सेवा से हटाया जाना अवैध था या नुकसान के लिए था, लेकिन एक परमादेश इस आधार पर बर्खास्तगी या सेवा से हटाने को रद्द करने का आदेश नहीं दे सकता है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन इस कारण से किया गया था कि विश्वविद्यालय पर अपने कर्मचारियों के प्रति कोई सार्वजनिक या वैधानिक कर्तव्य नहीं लगाया गया है। जिसके प्रवर्तन का दावा उत्तरार्द्ध द्वारा किया जा सकता है

(8) याचिकाकर्ता के वकील की एक और शिकायत यह है कि उसे सेवा से हटाने का आदेश उसके काम और आचरण पर कलंक लगाता है और इसलिए, एक निर्दोष आदेश नहीं था, बल्कि प्रकृति में दंडात्मक था। इस मामले को एक रिट याचिका में भी नहीं लिया जा सकता है जो सक्षम नहीं है और यदि याचिकाकर्ता द्वारा अपने सम्मान की पुष्टि के लिए मुकदमा दायर किया जाता है तो सिविल कोर्ट द्वारा इस पर विचार किया जा सकता है।

(9) *लखराज सथरामदास लालवानी बनाम एन. एम. शाह और अन्य*[3] के मामले में सुप्रीम कोर्ट के लॉर्डशिप द्वारा यह पाया गया था जो निम्नानुसार हैं:-

"हमारी राय में, डिप्टी कस्टोडियन - पी. 13 और पी. 16 का आदेश - अपीलकर्ता को व्यवसाय के प्रबंधन से हटाना किसी भी अवैधता से दूषित नहीं है। लेकिन इस धारणा पर भी कि अपीलकर्ता के प्रबंधन को समाप्त करने का डिप्टी कस्टोडियन का आदेश अवैध है, अपीलकर्ता संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत परमादेश की प्रकृति में रिट देने के लिए उच्च न्यायालय जाने का हकदार नहीं है । इसका कारण यह है कि परमादेश केवल उसी मामले में दी जा सकती है जहां संबंधित अधिकारी पर कोई सांविधिक कर्तव्य लगाया गया हो और उस अधिकारी की ओर से उस सांविधिक दायित्व का निर्वहन करने में विफलता हो। रिट का मुख्य कार्य क़ानून द्वारा निर्धारित सार्वजनिक कर्तव्यों के प्रदर्शन को मजबूर करना और अधीनस्थ न्यायाधिकरणों और सार्वजनिक कार्यों का उपयोग करने वाले अधिकारियों को उनके अधिकार क्षेत्र की सीमाओं के भीतर रखना है। वर्तमान मामले में, 1950 अधिनियम की धारा 10 (2) (बी) के तहत अपनी शक्ति के आधार पर संरक्षक द्वारा प्रबंधक के रूप में अपीलकर्ता की नियुक्ति इसकी प्रकृति में संविदात्मक है और उसके और अपीलकर्ता के बीच वैधानिक दायित्व है। हमारी राय में, लोक

3 A.I.R. 1966 S.G. 331.

सेवक के रूप में उसके द्वारा किए गए अनुबंध से लोक सेवक पर पड़ने वाला कोई भी कर्तव्य या दायित्व संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट की मशीनरी द्वारा लागू नहीं किया जा सकता है।

इस मामले में याचिकाकर्ता और विश्वविद्यालय के बीच अनुबंध एक मालिक और एक नौकर के बीच एक निजी प्रकृति का था और ऐसा कोई क़ानून नहीं था जो याचिकाकर्ता को कोई सुरक्षा उपाय प्रदान करता था जिसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता था और यदि इसका उल्लंघन किया जाता है तो यह याचिकाकर्ता को शिकायत का कोई कारण दे सकता है। प्राकृतिक न्याय के नियम किसी भी क़ानून में सन्निहित नहीं हैं। जैसा कि वाक्यांश से ही पता चलता है, वे न्याय करने के लिए हैं और उन अधिकारियों द्वारा पालन किया जाना है जिन पर एक सार्वजनिक वैधानिक कर्तव्य लगाया गया है, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि निजी पार्टियों को भी इसका पालन करना चाहिए। यदि सेवा से हटाने को याचिकाकर्ता द्वारा अवैध माना गया था, तो वह अपने निष्कासन को अवैध घोषित करने और इसके परिणामस्वरूप नुकसान के लिए एक सिविल मुकदमा दायर कर सकता था और उसे दायर करना चाहिए था।

(10) ऊपर दिए गए कारणों के लिए, याचिका सक्षम नहीं है और इसलिए, इसे खारिज कर दिया जाता है, लेकिन शुल्क के बारे में किसी भी आदेश के बिना।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के समिति उपयोग कि लिए है ताकि यह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। सभी व्यावहारिक और आपराधिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेज़ी संस्करण प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त होगा।

हिमांशु आर्य
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी
हरियाणा